Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2018 SISRRJ | Volume 1 | Issue 1 | ISSN : 2581- 6306

विक्रमोर्वशीय के पात्र

डॉ० किरण लता
फ्लैट न० – 27, जे० एफ – 2,
ब्लॉक न० – 5, रोड न० – 12,
राजेन्द्र नगर, पटना,
बिहार (भारत)

सारांश – प्रस्तुत शोधपत्र में 'विक्रमोर्वशीयम्' के पात्रों का क्रमशः चित्रण है। नायक पुरूरवा एवं नायिका उर्वशी अपनी-अपनी विशिष्टताओं के कारण सर्वाधिक ध्यान आकृष्ट करते हैं। पुरूरवा पराक्रमी राजा तथा आदर्श प्रेमी का समन्वित रूप है तो उर्वशी नृत्यकला और बुद्धिमत्ता की मूर्ति होने के साथ आदर्श प्रेमी भी है। नायिका का यह रूप कालिदास के आख्यानों में विद्यमान उसके चरित्र से पृथक करके निर्मित किया है। नायक-नायिका के प्रणय के सहयोगी अन्य पात्र भी हृदयावर्जन करते हैं।

प्रमुख शब्द – पात्र, चरित्रों, कथानक, नाट्यकार, अनुशीलन, सामाजिकों, अनुरञ्जन, नायक, प्रतिनायक, नाट्यवस्तु, वक्र-कथानक, पारिपार्श्वक, विदूषक।

कथात्मक साहित्य चाहे श्रव्य हो या दृश्य, उसमें चरित्र या पात्र अन्यतम तत्त्व होते हैं। इन्हीं के द्वारा कथा की घटनाएँ घटित होती हैं। ये पात्र ही हैं जो कथा की घटनाओं से प्रभावित होते हैं। इन्ही व्यक्तियों के क्रिया-कलाप से कथावस्तु का निर्माण होता है। किसी भी कृति में घटनाओं को बहुलता तथा प्रधानता हो, उसमें चरित्रों का अभाव नहीं हो सकता। वस्तुतः कथा की कल्पना में ही पात्र विद्यमान रहते है।

किसी कथा के पात्रों को किस प्रकार उपस्थापित किया जाय, यह बात रचना के रूप (विधा, Type), लेखक की रुचि तथा योग्यता एवं उसकी रचना के उद्देश्य पर आश्रित है। श्रव्यकाव्य और दृश्यकाव्य में, अथवा आधुनिक युग के काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि में पात्रों के प्रयोग अर्थात् चरित्र-चित्रण के अपने-अपने ढंग तथा विधान होते हैं।

कालिदास के रूपकों में पात्रों की संख्या सामान्य होती है, न अधिक न बहुत कम। आवश्यक पात्र ही रसानुकूल विन्यास से वहाँ सामाजिकों का हृदयावर्जन कहते हैं। यह तथ्य बहुत महत्त्वपूर्ण है कि रूपक में कथावस्तु के बाद पात्रों का ही स्थान होता है। पात्र ही कथानक को गति प्रदान करते हैं। रूपक का लेखक पात्रों के द्वारा ही अपने विचारों को प्रकट करता है। पात्रों को वह विभिन्न सुख-दुःखात्मक परिस्थितियों में रखकर जीवन के घात-प्रतिघातों

को प्रदर्शित करता है। कथानक तो स्वत: प्रच्छन्न रहता है। पात्र ही प्रकाशित रहते हैं। इसीलिये कहा जाता है कि पात्रों के द्वारा ही कथानक प्रकट होता है।

संस्कृत नाट्यशास्त्रियों ने कथावस्तु तथा रस के बीच पात्र (नेता) को स्थान देकर बहुत कौशल दिखाया है।[1] क्योंकि नायक तथा अन्य पात्र रूपक में मध्यममणि का काम करते हैं। एक ओर वे नाट्यकार के उद्देश्य रसोद्भावन को प्रकर्ष प्रदान करते हैं तो दूसरी और कथानक के विकास में भी उनका योगदान होता है।

संस्कृत रूपकों के पात्र अपनी मनोवृत्ति, संस्कार, वातावरण (परिवेश) तथा विविध सम्पर्कों के कारण जिस शील या चरित्र को प्रदर्शित करते हैं, वही उस रूपक का मूलाधार होता है तथा उसी के द्वारा रूपक-लेखक अपना संदेश प्रसारित करता है।[2] नाट्यशास्त्र में भरत ने पात्रों के स्वभाव और गुण का विस्तृत अनुशीलन किया है कि देवताओं तथा मुनष्यों के वर्गों के पात्रों के स्वभाव, गुण एवं क्रिया-कलाप किस प्रकार होते हैं। प्रत्येक पात्र अपने शील और व्यवहार द्वारा सामाजिकों का अनुरञ्जन करता है। नायक की सहायता के लिये भद्र और अभद्र दोनों प्रकार के पात्र रहते हैं। भद्र पात्र नायक को लक्ष्य तक पहुँचाते हैं जबकि अभद्र पात्र उसके मार्ग में विघ्न उत्पन्न कर के कथानक को वक्र और रोचक बनाते हैं। ऐसे पात्र नायक को संघर्ष की प्रेरणा देते हैं जिससे दर्शक भी जीवन के घात-प्रतिघात को झेलने की शिक्षा पाते हैं। जिस कथानक में संघर्ष नहीं होता वह सीधा-सादा (ऋजु) होने के कारण दर्शकों में कुतूहल उत्पन्न नहीं करता। यदि रावण नहीं रहे तो रामकथा रोचक नहीं होगी। राक्षसों का उपद्रव न हो तो देवताओं की कथा का विकास नहीं होगा।

इसीलिये नायक के साथ प्रतिनायक तथा अन्य विघ्नकर पात्रों की योजना की जाती है। नाट्य की अवस्थाओं में 'प्राप्त्याशा' एवं सन्धियों में 'प्रतिमुख' तथा 'गर्भ' की योजना यही सिद्ध करती है कि नाट्यवस्तु के विकास में वक्रता का स्थान अनिवार्य है।

कथानक में वक्रता का विन्यास कुटिल पात्रों के द्वारा प्रस्तुत किये गये विघ्न से होता है। कालिदास के प्रस्तुत नाटक 'विक्रमोर्वशीय' में कुटिल पात्र प्राय: सौम्य कथावस्तु प्रस्तुत करते हैं; जिसके कारण इस नाटक का प्रभाव 'अभिज्ञानशाकुन्तल' के वक्र कथानक की अपेक्षा कम होती है। उस नाटक में दुर्वासा के शाप के रूप में घटना वक्रता का विधान करती है। इस घटना की पृष्ठभूमि में दुर्वासा जैसे कुटिल पात्र लाये गये हैं रूपकों के पात्रों का शील निम्नलिखित चार प्रक्रियाओं से प्रकट होता है -(1) संवाद, (2) क्रिया-कलाप, (3) स्वगत-भाषण तथा (4) अन्य पात्रों के वार्तालाप से।

जिस पात्र का जैसा स्वभाव होता है, वह वैसे ही संवाद बोलता है। अन्य पात्रों से बातचीत के क्रम में कोई पात्र अपनी रुचि, प्रवृत्ति इच्छा, द्वेष आदि आन्तरिक विषयों को सामान्य स्थिति में प्रकासित करता है। कभी-कभी उसे स्वगत-कथन की आवश्यकता होती है जिसमें उसका चिन्तन प्रकट होता है। जिन रहस्यों को वह अन्य पात्रों के समक्ष प्रकट

नहीं कर पाता, उन्हें स्वगत-कथन में वह स्पष्ट कर देता है। संवादों और स्वगतकथनों के प्रयोग का अन्तर कुशल मनोवैज्ञानिक ही कर पाता है।

कुछ रूपककार साहित्यिक क्षमता के साथ मनोवैज्ञानिक सामर्थ्य भी रखते हैं। वे पात्रों के मन की गहराइयों में उतरकर कुशलता से स्वगत-कथन एवं सामान्य-कथन में अन्तर बनाये रखते हैं। सरल पात्रों में यह अन्तर अधिक नहीं होता। उर्वशी का स्वगत-कथन उसके सामान्य-कथन से भिन्न नहीं है जबकि राजा पुरूरवा का विदूषक के सामने किया गया कथन महारानी के समक्ष किये गये कथन से भिन्न होता है। राजा में बुद्धिमत्ता के साथ अवसर की पहचान है अत: वे नाप -तौल कर बोलते हैं। कालिदास ने उनके शील में ऐसे ही तत्त्व निहित किये हैं। कुछ पात्र अपनी सरलता के कारण गोपनीय बातों को भी प्रकट कर देते हैं (जैसे 'विक्रमोर्वशीय' का विदूषक) तो कुछ पात्र प्रकट किये जाने योग्य तथ्यों को भी छिपा लेते हैं या अवसर पर भी मौन धारण कर लेते हैं जैसे 'अभिज्ञानशाकुन्तल' का विदूषक जो शकुन्तला के प्रति दुष्यन्त के प्रेम को पंचम अंक में प्रकट नहीं करता)। किन्तु ऐसा दिखाने में नाट्यकार का उद्देश्य कथानक को वक्र रूप में प्रस्तुत करना ही होता है।

पात्रों के क्रिया-कलाप का भी चरित्र के प्रकाशन में योगदान होता है। इससे नाट्य में दृढ़ता आती है। यदि पात्रों का कार्यव्यापार नहीं दिखाया गया तो नाट्य शिथिल हो जाता है। पात्रों के क्रिया कलाप से एक ओर नाटक को गाति मिलती है तो दूसरी ओर पात्रों के चरित्र का इनसे प्रत्यक्षीकरण भी होता है। संवाद और स्वगत-कथन तो केवल वाणी के व्यापार हैं, चरित्र के संपूर्ण पक्ष को ये प्रकाशित नहीं भी कर सकते हैं। यह संभव है कि वाणी के द्वारा कोई पात्र अपने वास्तिविक रूप को प्रकट नहीं कर रहा हो। विशेषत: राजनीति में प्रवीण पात्र तो ऐसा करने में परम पटु होते हैं। स्वगत-कथन में कोई चरित्र अपने मौलिक स्वरूप को स्पष्ट करता है किन्तु उसके क्रिया-कलाप तो उसके यथार्थ रूप को सर्वथा अनावृत्त ही कर देते हैं। अत: किसी पात्र के शील के प्रकाशन में कार्य व्यापार में प्रबलतम साधन होता है।

संस्कृत के यशस्वी नाटककारों ने इस विषय में अपने पात्रों के क्रिया-कलापों का बहुत ही सुन्दर अंकन किया है जिनसे उनके शील स्पष्टत: प्रतीत होते हैं। भास, कालिदास, शूद्रक इत्यादि नाट्यकारों के पात्र मन, वचन और कर्म से युग का प्रतिनिधित्व करते हैं।

विक्रमोर्वशीय के पुरुष पात्र

इस रूपक में दस पुरुष तथा दस ही स्त्री पात्र हैं। इनके अतिरिक्त इन्द्र, केशी (राक्षस) तथा भरत (नाट्य के प्रवर्तक मुनि) इन तीनों का निर्देश मिलता है। ये मंच पर नहीं आते। इन सभी पात्रों का शील-निरूपण कालिदास ने स्वतन्त्र रूप से, परम्परा से प्रभावित हुए बिना, किया है।

पुरुष पात्रों में सूत्रधार और पारिपार्श्वक केवल प्रस्तावना में सीमित हैं अर्थात् नाटक की परम्परा के निर्वाह के लिये लाये गये पात्र है। सूत्रधार समस्त नाट्य प्रयोग को संचालित करनेवाला व्यक्ति होता है। यह नाटक की प्रस्तावना में स्वयं रंगमञ्च पर पात्र के रूप में उपस्थित होता है। वही स्थापना या प्ररोचना के द्वारा नाटक का आरम्भ करता है। सूत्रधार की प्रेरणा तथा कल्पना पर ही समस्त नाट्य–प्रयोग आश्रित होते हैं। भरत ने इसके गुणों का वर्णन विस्तार से किया है। तद्नुसार वह नाट्य–प्रयोग में कुशल, अनेक शिल्पों का ज्ञाता, सभी शास्त्रों मे कुशल, स्मृति तथा बुद्धि से पर्याप्त विकसित, धीर, उदार, अपनी वाणी का पालन करनेवाला नीरोग, मधुर स्वभाव का, क्षमाशील इत्यादि होता है। ये सारे गुण सूत्रधार की व्यक्तिगत विशिष्टता के अन्तर्गत होते हैं। मञ्च पर इन्हें प्रकट करने का अवसर सूत्रधार को स्वत: नहीं मिलता। फिर भी नाट्य–प्रयोग की दृष्टि से यह तथ्य विचारणीय है कि नाटक में भूमिका करनेवाले अभिनेताओं का चयन, उनके संवाद और अभिनय का प्रशिक्षण देना, रंगमञ्च की सजावट, पात्रों के गमनागमन पर नियंत्रण रखना इत्यादि उसके ही कार्य हैं। सूत्रधार ही प्रस्तावना में कवि और काव्य का परिचय दर्शकों को देता है तथा नाटक के प्रथम अंक के आरम्भ का निर्देश प्रस्तावना में ही कर देता है। इस प्रकार आधुनिक भाषा में कहें कि सूत्रधार ही नाट्य–समारोह का उद्घाटनकर्ता होता है।

प्रस्तावना में सूत्रधार अकेला नहीं रहता अपितु उसके साथ कोई और पात्र भी नट, नटी या पारिवार्श्वक के रूप में होता है जो सूत्रधार की सहायता करता है। विक्रमोर्वशीय में पारिपार्श्वक ही सूत्रधार, का सहायक पात्र है। भरत ने इसके विषय में कहा है कि जो सूत्रधार के पार्श्व में रहकर उसके निर्देशानुसार कार्य करता है उसे पारिपार्श्वक कहते हैं। प्रस्तुत नाटक में पारिपार्श्वक सूत्रधार से यह आदेश पाता है कि सभी पात्रों को अपने अपने पाठों के प्रति सावधान (जागरूक) रहने के लिये कह दो।[3]

ये दोनों पात्र प्रस्तावना में ही आते हैं, मूल नाटक में नहीं। इसलिये इन दोनों पात्रों के शील–निरूपण का बहुत महत्त्व नहीं होता। इनका महत्त्व अभिनय के सन्दर्भ में ही रहता है।

(1) पुरूरवा रूपक का नायक - नाट्य के तत्त्वों में कथानक के बाद नेता या नायक का ही स्थान है। इन दोनों शब्दों में नी (प्रापणे) धातु है जिसका अर्थ है पहुँचाना, ले जाना इत्यादि, इसलिये नायक या नेता का नाट्य–जगत् में अर्थ होता है कि जो कथानक के आरम्भ से अन्त तक फल की ओर ले चले, सम्पूर्ण कथानक को एक मार्ग पर व्यवस्थित करते हुए उसके अन्तिम प्रयोजन की सिद्धि कर सके। नायक को ही नाट्य का फल मिलता है।

धनञ्जय ने दशरूपक में नायक के सामान्य गुणों का वर्णन करते हुए कहा है कि इन सब से या यथासाध्य अधिकाधिक गुणों से रूपक के नायक को सम्पन्न होना चाहिये। तदनुसार नायक विनम्र, मधुर, त्याणी, चतुर (दक्ष), प्रिय बोलनेवाला, लोगों को प्रसन्न रखनेवाला (रक्तलोक:), शुद्ध हृदय से युक्त (शुचि:), वार्तालाप में कुशल (वाग्मी), कुलीन वंश में उत्पन्न तथा चित्त से स्थिर युवक होता है। उसमें बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा, कला तथा मान (स्वाभिमान) भी रहता है। इसके अतिरिक्त वह शूर, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्रज्ञ एवं धार्मिक भी होता है।

भरत ने नायक के सम्बन्ध में यह व्यवस्था की है कि वह व्यसन और अभ्युदय की दृष्टि से नाटक के अन्य पात्रों की अपेक्षा प्रधान होता है –

व्यसनी प्राप्य दु:खं वा युज्यतेऽभ्युदयेन य:।

तथा पुरुषमाहुस्तं प्रधानं नायक बुधा: ॥

तात्पर्य यह है कि नायक को ही नाटक के बीच में दु:ख भोगना पड़ता है, उसके सहायक पात्र तो उसके दु:ख के सहभागी होने के कारण परोक्षत: दु:खी होते हैं। इसी प्रकार अभ्युदय (उन्नति, सुख–भोग या फलप्राप्ति) में भी वही अग्रणी होता है। उसी को नाट्य का अन्तिम फल – धर्म, अर्थ, काम के रूप में मिलता है। इसीलिये अन्य पात्रों के ऊपर होने से वह नायक कहा जाता है। सभी नायकों में उपर्युक्त विनम्रता आदि गुण होते हैं; फिर भी विशेष प्रकार के रूपकों में नायकों का वैविध्य रहता है। इसलिये नाट्यशास्त्रियों ने नायकों के भेद किये हैं जो दृष्टिभेद तथा अन्य कारणों से अनेक प्रकार के होते हैं।

नायक को शील, प्रकृति तथा स्वभाव के आधार पर तीन प्रकार से वर्गीकृत किया जाता है। शील की दृष्टि से नायक–चार प्रकार के होते हैं – धीरोदात्त, धोरोद्धत, धीरप्रशान्त तथा धीरललित। प्रकृति के अनुसार नायक के तीन भेद हैं – उत्तम, मध्यम तथा अधम। कुल के अनुसार भी नायक तीन प्रकार के होते हैं – दिव्य (देवता, विष्णु, इन्द्र आदि), अदिव्य (मनुष्य) तथा दिव्यादिव्य (अवतार)।'

इन प्रकारों में पुरूरवा धीरोदात्त, उत्तम प्रकृति तथा अदिव्य (मनुष्य) कोटि का नायक है। इसलिये इन कोटियों का स्पष्टीकरण आवश्यक है। धीरोदात्त नायक महासत्त्ववाला (अर्थात् क्रोध शोक आदि से अप्रभावित रहनेवाला), अत्यन्त गम्भीर, क्षमाशील (सहिष्णु) आत्मश्लाघा न करनेवाला (अविकत्थन:) स्थिर बुद्धिवाला (चंचलता से रहित) विनम्रता से अपने अभिमान को दबा रखने वाला (स्वाभिमानी – निगूढाहंकार:) एवं अपने व्रत को अन्त तक निबाहनेवाला व्यक्ति होता है। हम देखेंगे कि पुरूरवा में ये गुण किस रूप में अवस्थित हैं।

प्रकृति के अनुसार जो उत्तम नायक होता है वह स्वभाव से मधुर, त्यागी, नायिका के प्रति उदात्त भाव रखनेवाला अर्थात् नायिका के अपमान को न सहनेवाला होता है। इसी प्रकार अदिव्य नायक मनुष्य के रूप में उत्तमोत्तम गुणों से सम्पन्न होता है। विक्रमोर्वशीय का नायक राजा पुरूरवा इसी कोटि में अवस्थित नायक है।

इस प्रकार राजा पुरूरवा के चरित्र के विभिन्न पक्षों का अनुशीलन समुचित परिप्रेक्ष्य तथा प्रसंग में किया जा सकता है।

कामसहायक विदूषक - विदूषक को नाट्यशास्त्रियों ने हास्य उत्पन्न करनेवाला एवं राजा का अन्यतम शृंगार सहायक कहा है।[4] आकार–प्रकार में वह कुरूप होता है, जाति से वह ब्राह्मण होने पर भी निरक्षर तथा मूर्ख होता है। निरन्तर अपमानित होने पर भी वह कुपित नहीं होता। अपने मित्र राजा के मानसिक तनाव को वह दूर करता है। इसीलिये राजा अपने हृदय की सभी बातें उससे खुलकर कहते हैं। अपनी असावधानी से वह ऐसे काम कर बैठता है जिनसे

राजा को क्रोध हो सकता था किन्तु नाट्य के कथानक को वक्र बनाने में विदूषक के प्रमाद की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

विक्रमोर्वशीय का विदूषक भी कुरूप है। द्वितीय अंक के प्रवेशक में निपुणिका उसका वर्णन करती है कि आर्य माणवक चित्रांकित वानर के समान कुछ सोचते यहाँ छिपे हैं (आलेख्यवानर इव किमपि मन्त्रयन्)। विदूषक की निरक्षरता तब प्रकट होती है जब वह उर्वशी द्वारा लिखे गये प्रेमपत्र को पढ़ नहीं पाता किन्तु पत्र को सुनना अवश्य चाहता है (यदत्र लिखितं तत् श्रोतुमिच्छामि)।

विदूषक की भोजन-प्रियता - संस्कृत नाटकों का विदूषक विशेष रूप से भोजन के प्रेमी के रूप में चित्रित किया गया है। भास के नाटकों से यह परम्परा प्रारंभ होती है। इस नाटक का विदूषक भी निरन्तर भोजन के उपक्रम में लगा रहता है। वह उर्वशी का परिचय निपुणिका को देते हुए कहता है। कि उसके दर्शन से राजा ने केवल महारानी को कष्ट दे रहे हैं अपितु मेरा भी भोजन पानी छुड़वाकर दु:ख दे रहे हैं (मामपि ब्राह्मण माशितव्यविमुखं दृढ़ पीड़यति)। राजा के सभी संकटों का निवारण वह रसोई घर में चलने का परामर्श देकर दूर करना चाहता है (महानसं गच्छाव:)। राजा को जब महारानी औशीनरी उर्वशी के प्रेम में आशक्त जानकर कुछ अव्यवस्थित रूप में देखती है, तो विदूषक तुरत कहता है कि महाराज के भोजन के प्रबन्ध में शीध्रता कीजिये जिससे इनके पित्त का शमन हो सके। वह आगे भी कहता है कि पिशाच भी भोजन से प्रसन्न हो जाते हैं। विदूषक मांसाहारी है क्योंकि एक स्थान पर वह कहता है कि जब कभी माँगने पर भी हरिणी का मधुर माँस खाने को नहीं मिलता तब मैं उसका केवल नाम लेकर अपने को आश्वस्त कर लेता हूँ (अहमपि प्रार्थयमानो यदा मिष्टहरिणीमांसभोजनं न लभे तदैतत्सङ्कीर्तयन्नाश्वासयाम्यात्मानम्)।

विदूषक की अल्पबुद्धि - विदूषक राजा का मित्र है किन्तु अपनी मूर्खता के कारण कभी-कभी राजा का तात्कालिक अहित भी कर देता है। इस नाटक में वह दो बार ऐसा करता है। पहली बार तो द्वितीय अंक के प्रवेशक में वह राजा के उर्वशी-विषयक प्रेम का रहस्य किसी के समक्ष उद्घाटित करने के लिये व्याकुल है। रहस्य को छिपाने में वह असमर्थ है। महारानी की चेटी निपुणिका उससे यह रहस्य उगलवाकर महारानी को कह आती है। दूसरी असावधानी विदूषक से तब होती है जब उर्वशी के प्रेमपत्र को वह अपने हाथों में रखकर भी प्रमादवश खो देता है। राजा के द्वारा डाँटे जाने पर वह सरलता से कहता है कि वह तो दिव्य भोजपत्र था वह भी उर्वशी के साथ ही चला गया।[5]

मूर्ख और सरल स्वभाव का होने पर भी वह उर्वशी के दर्शन से विस्मित है इसलिये उसके हाथ से भोजपत्र कब गिर गया उसे पता ही नहीं चला। इस प्रकार वह अल्प बुद्धि का सरल व्यक्ति है। अपनी अल्पबुद्धि का उसे आभास भी है। जब वह राजा को उर्वशी से मिलने के दो सहज उपायों को सुझाता है कि गहरी नींद में सोकर स्वप्न में उससे भेंट कीजिये अथवा चित्रफलक पर उसका चित्र बनाकर देखते रहिये (**स्पप्नसमागमकारिणी निद्रां सेवतां भवान्, अथवा तत्रभवत्या उर्वश्या: प्रतिकृतिं चित्रफलके आलिख्य अवलोकयन् तिष्ठतु**) तो राजा के द्वारा इन दोनों उपायों को व्यर्थ

बताने पर वह तुरत कहता है– **एतावानेव मे मतिविभवः।** अर्थात् मेरी बुद्धि की पूँजी तो इतनी ही है, इससे आगे मैं सोच ही नहीं सकता।

लोकोक्तियों का सार्थक प्रयोग – विदूषक भले ही मूर्ख और अल्पमति का हो किन्तु समय आने पर वह बहुत सुन्दर लोकोक्तियों का प्रयोग करता है। जब उर्वशी का प्रेमपत्र महारानी के हाथ में आ जाता है और राजा पकड़े जाते हैं तब विदूषक से वे बचने का उपाय पूछते हैं। विदूषक कहता है कि चोरी के माल के साथ पकड़ा गया चोर उत्तर ही क्या दे सकता है (लोत्रेण गृहीतस्य कुम्भीरकस्यास्ति वा प्रतिवचनम्)?' राजा को स्वयं बातें बनाकर इस संकट से मुक्त होना पड़ता है। दूसरी बार विदूषक तृतीय अंक में महारानी औशीनरी के द्वारा राजा को अन्य स्त्री से प्रीति की अनुमति दिये जाने पर राजा से कहता है कि महारानी के पास उपाय ही क्या था? जब मछली हाथ से फिसलकर पानी में भाग जाय तो मछुआ भी कहता है कि जाओ, मुझे धर्म ही होगा (भिन्नहस्ते मत्स्ये पलायिते निर्विष्णो धीवरो भणति–गच्छ, धर्मो मे भविष्यतीति)।' इस उक्ति को ईसप की नीतिकथाओं में 'खट्टे अंगूर कौन खाये (Grapes are sour) के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार विदूषक के द्वारा लोकोक्तियों का सार्थक प्रयोग उसकी व्यावहारिक दृष्टि का परिचायक है।

(3) अन्य पुरुषपात्र - विक्रमोर्वशीय के प्रथम अंक में गन्धर्वराज चित्ररथ आते हैं। ये केवल सूचना देने के लिये आते हैं कि गन्धर्वो की सेना को इन्द्र ने आदेश दिया था कि केशी राक्षस से उर्वशी को छुड़ा लाएँ। चित्ररथ राजा पुरूरवा के दर्शनार्थ आ गये हैं क्योंकि उन्होंने चारणों से राजा की विजय से सम्बद्ध गीत सुने। चित्ररथ राजा से अनुरोध करते हैं कि आप मित्र के नाते इस उर्वशी को इन्द्र के हाथों में समर्पित कर दीजिये। चित्ररथ का एक वाक्य बहुत महत्त्वपूर्ण है जिसमें वे कहते हैं कि पराक्रमी व्यक्ति की शोभा उसकी विनम्रता है – अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकारः।

इस नाटक के दूसरे महत्त्वपूर्ण पात्र नारद हैं जिनका एक बार पंचम अंक में मञ्च पर आगमन होता है तथा इसके पूर्व एक बार उनकी चर्चा होती है। नारद सूचनाओं के प्रसारण से सम्बद्ध पात्र हैं। इन्द्र ने उर्वशी के हरण का वृत्तान्त नारद से ही सुना था। इसकी चर्चा चित्ररथ करते हैं। अन्तिम अंक में नारद का प्रवेश कथानक को सुखमय परिवर्तन प्रदान करने के लिये होता है। उस समय उर्वशी अपनी संविदा के अनुसार राजा को उनका पुत्र समर्पित करके स्वर्गलोक में लौटने की तैयारी कर रही थी, राजा भी उसके वियोग को न सह पाने के कारण अपने पुत्र को राज्य समर्पित करके स्वयं वानप्रस्थ आश्रम में जाने के लिये प्रस्तुत हो रहे थे इसी बीच नारद आनन्दमय समाचार लेकर आते हैं। वे इन्द्र का संदेश सुनाते हैं कि उर्वशी आजीवन आपकी सहधर्मचारिणी बनी रहेगी। आपको शस्त्र त्याग कर वन में जाने का विचार नहीं करना है। इस प्रकार नारद राजा को हर्षमिश्रित आश्चर्य प्रदान करते हैं। वे राजकुमार आयुक युवराज पद पर अभिषेक का भी उपक्रम सम्पन्न करते हैं। वे कहते हैं कि इन्द्र ने कुमार कार्तिकेय को जिस प्रकार सेनापति बनया था उसी प्रकार आज आयु का अभिषेक हुआ। नारद की प्रवृत्ति यहाँ सुखात्मक है। इन्हीं के कारण यह नाटक कुतूहल और वक्रता से सम्पन्न होता है।

राजकुमार आयु राजा पुरूरवा का उर्वशी से उत्पन्न पुत्र है, जिसके जन्म का वृत्तान्त राजा से बहुत दिनों तक छिपाया जाता है। आयु ऐतिहासिक (वैदिक तथा पौराणिक) पात्र है। इस नाटक में उर्वशी को इन्द्र ने यह कहा था कि मृत्युलोक में तुम तभी तक रहोगी जब तक तुम राजा को अपने पुत्र का मुख न दिखा दो। इन्द्र का यह कथन भरतमुनि के शाप के संशोधन के रूप में था। जब उर्वशी मृत्युलोक में राजा के प्रति अत्यधिक आसक्त हो गयी तो उनके वियोग के भय से अपने पुत्र को उसने राजा के समक्ष प्रकट नहीं होने दिया। आयु का लालन-पालन तथा शिक्षा-दीक्षा च्यवन ऋषि के आश्रम में सम्पन्न हुई। वह क्षत्रियोचित अस्त्र-शस्त्र से भी सम्पन्न हो गया।

आयु की अस्त्र-विद्या का प्रमाण तब मिलता है जब वह संगमनीय मणि को चोंच में लेकर उड़नेवाले गीध का वध आकाश में ही कर देता है। इस प्रकार अस्त्र-विद्या की दृष्टि से वह 'चललक्ष्यवेधी' है। वह शिष्टाचार की मूर्ति भी है क्योंकि तापसी के कहने पर वह राजा के पैर छूता है और विदूषक को भी प्रणाम करता है। बहुत दिनों के बाद वह अपनी माता उर्वशी को देखता है, उनका भी अभिवादन करता है। आयु बालसुलभ सरलता से भी सम्पन्न है वह तापसी के साथ पुनः आश्रम में लौटना चाहता है। जब तापसी मना करती है जो वह उस मोर को यहाँ भेज देने का अनुरोध करता है जिसे आश्रम में वह अपनी गोद में सुलाकर हाथों से खुजलाता था।

आयु के चरित्र की एक अन्य विशेषता विनय के रूप में प्राप्त होती है। जैसे ही राजा उर्वशी के भावी वियोग की दृष्टि से कहते हैं कि मैं आज ही अपने पुत्र पर राज्यभार सौप कर वनो में चला जाऊँगा, तो आयु तुरत कहता है कि रथ के जिस जुए को बड़ा बैल खींचता हो उसे छोटे बछड़े के कंधे पर डालदेना उचित नहीं है (**नार्हति तातः पुङ्गवधारितायां धुरि दम्यं नियोजयितुम्**)।' उसे प्रोत्साहित करने के लिये राजा गजशावक (कलभ) तथा सर्पशिशु के उपमानों से समझाते हैं कि कर्तव्यपालन की शक्ति वय से नहीं अपितु जाति से ही होती है न खलु वयसा जात्यैवायं स्वकार्यसहो भरः। इस प्रकार आयु के चरित्र के अनेक वैशिष्ट्य इस नाटक में प्रकट होते हैं। जिस आयु का नामोल्लेख मात्र करके पुराणों की कथाएँ आगे बढ़ गयी हैं, उसके विशिष्ट शील पर कालिदास ने ध्यान दिया है।

इस नाटक के तृतीय अंक के आरम्भ में भरतमुनि के दो शिष्य गालव तथा पेलव (पल्लव) रिक्त कथावस्तु की पूर्ति के लिये विष्कम्भक में आते हैं। इनमें गालव प्रबुद्ध होने के कारण संस्कृत बोलता है जबकि पेलव प्राकृत भाषा-भाषी है। पेलव ही यह सूचना देता है कि उर्वशी ने 'लक्ष्मी-स्वयंवर' नाटक के अभिनय करते हुए पुरुषोत्तम विष्णु के स्थान पर पुरूरवा शब्द का उच्चारण कर दिया जिससे नाट्याचार्य भरत ने उसे मृत्युलोक में जाने का शाप दे दिया। यह तो नाटक के समाप्ति के बाद इन्द्र ने कृपा की और कहा कि तुम मेरे युद्ध सहायक राजर्षि पुरूरवा के पास रहकर उसे संतान देकर आ जाना। इस प्रकार ये दोनों शिष्य कथानक को जोड़नेवाले अंश में भूमिका रखते हैं।

इसी प्रकार कुछ अन्य पात्र हैं - राजा का सारथि (सूत), कञ्चुकी, किरात तथा वैतालिक। इनकी भूमिका अत्यन्त संक्षिप्त है।

विक्रमोर्वशीय में स्त्री-पात्र

नाटक को स्वाभाविक धरातल पर प्रवृत्त करने के लिये पुरुष पात्रों के साथ स्त्री पात्रों की भी आवश्यकता होती है। जीवन का यथार्थ स्त्री-पुरुषमय होता है। शृंगारप्रधान नाटकों में नायिका तथा उसकी सहेलियाँ तथा कथानक को आगे बढ़ानेवाले अन्य स्त्री-पात्र अनिवार्य हैं। विक्रमोर्वशीय में भी दस स्त्री-पात्रों का प्रयोग कालिदास ने किया है - उर्वशी, औशीनरी, चित्रलेखा, रम्भा, मेनका, सहजन्या, निपुणिका, तापसी, यवनी तथा चेटी। इनमें उर्वशी नाटक की नायिका है, औशीनरी राजा की ज्येष्ठा रानी है। चित्रलेखा उर्वशी की प्रिय सखी है जो उसके साथ देवलोक से राजा के पास तक आती है। रम्भा, मेनका और सहजन्या देवलोक की अप्सराएँ हैं। निपुणिका महारानी औशीनरी की दासी है। तापसी च्यवनाश्रम में रहनेवाली तपस्विनी नारी है जो उर्वशी के पुत्र आयु का पालन पोषण करती है। यवनी और चेटी राजा की सेविकाएँ हैं। महत्त्व के अनुसार प्रमुख स्त्री-पात्रों का शील-निरूपण यहाँ किया जाता है।

(1) उर्वशी - नाटक की नायिका

जिस सुन्दरी को देखकर नायक के हृदय में रतिभाव उत्पन्न हो उसे नायिका कहते हैं।[6] शृंगारप्रधान रूपकों में नायिका अनिवार्य होती है। काव्यशास्त्र के आचार्यों ने नायिका में शोभा, कान्ति, दीप्ति और यौवन ये गुण आवश्यक कहे हैं। नायिका के भेदों के वर्णन में काव्यशास्त्रियों ने अपनी उर्वर प्रतिभा और कल्पना-शक्ति का पूर्ण निवेश किया है। नायिकाभेद के कई आधार हैं जिनमें कुछ बहुत महत्त्व रखते हैं। सामाजिक व्यवहार के अनुसार नायिका स्वीया (पत्नी), परकीया (प्रेमिका) तथा सामान्या (गणिका) इन तीन भेदों में मानी जाती है। अवस्था के अनुसार उसे मुग्धा, मध्या तथा प्रगल्भा के रूप में तीन वर्गों में रखते हैं। पति के प्रेम के अनुसार वह ज्येष्ठा या कनिष्ठा हो सकती है। विक्रमोर्वशीय में औशीनरी ज्येष्ठा नायिका है जबकि उर्वशी कनिष्ठा नायिका है। औशीनरी को स्वीया (स्वकीया) नायिका के रूप में रखते हैं जबकि उर्वशी को सामान्या की कोटि में काले महोदय ने रखा है। वे कहते हैं कि साधारण स्त्री होने के कारण उसका स्वाभिमान राजा से होनेवाली भेंट के समय मुखर नहीं होता। विवाह के बाद ही वह राजा को लेकर गंधमादन वन में विहार के लिये जाती है जहाँ वह राजा पर विद्याधर-कन्या को देर तक देखते रहने के कारण कुपित हो जाती है। इस प्रकार वह आती तो है साधारण स्त्री के रूप में किन्तु आगे चलकर वह स्वकीया का अधिकार प्राप्त कर लेती है। वह मृच्छकटिक की वसन्तसेना के समान साधारण स्त्री नहीं है।

उर्वशी को पुरातन आख्यानों में एक जटिल तथा कठोरहृदय सुन्दरी के रूप में चित्रित किया गया था। किन्तु कालिदास ने उर्वशी को भीतर और बाहर दोनों दृष्टियों से नया सौम्य रूप प्रदान किया। वह पूर्णत: पुरूरवा पर समर्पित प्रेमिका है। दिव्य श्रेणी की विजातीय अप्सरा होने पर भी उसमें मानवीय गुण भरपूर हैं।

सुकमारता तथा सुन्दरता - कालिदास की उर्वशी अत्यन्त सुकुमार तथा अनुपम सुन्दरी है। कालिदास ने अपनी अन्य नायिकाओं में भी सुन्दरता का समावेश प्रदर्शित किया है। किन्तु सुकुमारता की दृष्टि से परखने का अवसर उन्हें केवल उर्वशी के प्रसंग में मिला है। उर्वशी राक्षस के द्वारा अपहृत होकर भय के कारण प्राय: चेतनाशून्य जैसी हो गयी है। उसकी सखी चित्रलेखा निरन्तर कहती है कि केवल सांस लेने से वह जीवित लगती है। अन्यथा वह चेतना प्राप्त नहीं कर रही है। राजा भी उसकी सुकुमारता का वर्णन करते हैं कि इसके कुसुमकोमल हृदय से भय की विभीषिका

दूर नहीं हो रही है (**मुञ्चति न तावदस्या भयकम्पः कुसुमकोमलं हृदयम्**)। उसके कोमल हृदय का ही एक परिणाम अपनी सखी चित्रलेखा के प्रति सौहार्दभाव के रूप में प्रकट होता है।

सुन्दरता की दृष्टि से वह कोमलता आकर्षण एवं रूप- इन तीनों गुणों से सम्पन्न है। इसीलिये तो पुरूरवा उसके निर्माण के लिये कान्तिप्रद चन्द्रमा को अथवा शृंगार में आनन्द लेनेवाले अथवा पुष्पसमृद्धि से भरे हुए वसंत को प्रकल्पित करते हैं। चन्द्रमा से लावण्य, कामदेव से आकर्षकता तथा वसंत से सुकुमारता का आधान उर्वशी के रूप वैभव में प्राप्त होता है। अप्सराएं नृत्य, संगीत और अभिनय से जुड़ी होने के कारण स्वभावतः तथा आहार्य रचना के कारण सुन्दरी होती हैं किन्तु उर्वशी को देखकर सारी अप्सराएँ अपने रूप-वैभव की निष्फलता समझ कर लज्जित हो गयीं।

उर्वशी के सौन्दर्य का निरूपण परोक्ष रूप से भी राजा के द्वारा किया गया है। विदूषक के समक्ष राजा कहते हैं कि उसके एक-एक अंग का वर्णन करना तो असंभव ही है। संक्षेप में यही समझो कि उसका शरीर अलंकारों का अलंकार है (अर्थात् कोई भी अलंकार उसके शरीर पर रहने से अपना ही उत्कर्ष प्राप्त करते हैं), वह शृंगार के उपादानों का भी शृंगार है (अर्थात् ये समस्त उपादान उसके शरीर पर ही शोभान्वित होते हैं) तथा समस्त उपमानों की भी उपमा उसी से दी जा सकती है (अर्थात् चन्द्र आदि उपमान स्वयं उपमेय होकर उर्वशी के अवयवों को ही उपमान बनाते हैं)। भाव यह है कि उपमेय की अपेक्षा उपमान में गुण अधिक होते हैं इसलिये समस्त उपमान उर्वशी के अंगों को ही उपमान बनाते हैं। उपमानों के आधार पर नारी-सौन्दर्य की कल्पना में कालिदास की विशेष अभिरुचि है। हिमालयपुत्री उमा के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कविसम्राट ने कहा है -

सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन।
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव।।

अर्थात् संसार के निर्माता ब्रह्मा पृथ्वी की समस्त सुन्दरता को एक स्थान पर देखना चाहते थे। इसीलिये उन्होंने सुन्दर अंगों के उपमान के रूप में आनेवाले सभी पदार्थों को प्रयत्नपूर्वक संकलित किया तथा उन्होंने सब अंगों पर यथास्थान सजाकर सुन्दरता की मूर्ति पार्वती का निर्माण किया था।

कला-प्रेम - उर्वशी अप्सरा होने के नाते देवलोक की नृत्यांगना तथा अभिनेत्री भी थी। उसका यह कलाकार-रूप उसे देवलोक में सबका प्रिय बनाये हुए था। इन्द्र भी उसकी उपस्थिति अपनी सभा में अनिवार्य मानते थे।

पुरूरवा के पास जब प्रेमपत्र प्रेषित करके वह उनके समक्ष आ जाती है तथा उन दोनों के बीच प्रेमालाप आरम्भ ही होता है कि उसके अभिनय को देखने के लिये इन्द्रलोक से आदेश आ जाता है। देवदूत नेपथ्य से चित्रलेखा को कहता है कि उर्वशी को शीघ्र देवलोक में ले जाओ। उर्वशी के समक्ष धर्मसंकट (Casuistry) है कि वह राजा के समक्ष रहे या भरतमुनि के नाटक में अभिनय करने के लिये जाये। कवि ने उर्वशी की मनःस्थिति का सम्यक् विश्लेषण करके

चित्रलेखा से राजा के सामने उर्वशी के पक्ष से निवेदन कराया है – परवशोऽयं जनः, तन्महाराजेन अभ्यनुज्ञाता इच्छामि देवेषु अनपराद्धम् आत्मानं कर्तुम्।' उर्वशी में स्वयं यह साहस नहीं होता कि महाराज से अनुमति माँगे। उसके जीवन में यह प्रथम प्रेम का अवसर है अतः वह मुग्धा नायिका के समान अपने अभिनयनियोग का कथन स्वयं नहीं कर सकती। राजकार्य के समान वह उचित माध्यम से राजा को अपनी भावना बताती है। उसका कला–प्रेम व्यावसायिक है। उसके 'परवशोऽयंजनः' इस कथन में सारी बातें स्पष्ट हो जाती है। वह नहीं चाहती कि देवताओं के समक्ष अभिनय में अपराधी बने। भरतमुनि से उसने अभिनय की पूर्णशिक्षा प्राप्त की है जिसके प्रयोग (Performance) का अवसर वह छोड़ना नहीं चाहती।

उर्वशी का प्रेमिका - रूप उर्वशी के पुरातन आख्यानों में उसे एक व्यावहारिक तथा कुछ दूर तक स्वार्थप्रवण नारी के रूप में चित्रित किया गया है किन्तु कालिदास ने इस नाटक में उसके चरित्र को दूसरी दिशा में प्रस्तुत करके उसका प्रेमिका रूप अभिव्यक्त किया है। फिर भी पुरूरवा के प्रेम के समक्ष उसकी भावनाएँ ईषत् न्यून ही लगती हैं जैसा कि पूर्व के आख्यानों में पुरूरवा को उत्कृष्ट प्रेमी के रूप में देखा गया था। कालिदास ने उर्वशी के प्रेम के अनेक पक्षों को अनावृत्त किया है।

वह सर्वप्रथम राजा को अपने रक्षक के रूप में देखती है। चेतना प्राप्त करने पर आँखें खोल कर वह चित्रलेखा से यही पूछती है कि क्या इन्द्र ने मेरी रक्षा की? राजा के कई आश्वासनों तथा वचनों के बाद वह उनके वचन को अमृत मानती है। जब उसे महाराज के बाह्य सौन्दर्य का ध्यान होता है। राजा उर्वशी को अपने रथ पर चढ़ा कर हेमकूट पर्वत पर ले आते हैं जहाँ उसकी सभी सखियाँ वर्त्तमान हैं। यहाँ भी उर्वशी अपने हृदय की भावना को राजा के समक्ष स्वतः प्रकट नहीं कर पाती, चित्रलेखा को ही माध्यम बनाती है (**तत् त्वमेव मे मुखं भव**)। यह मनोविश्लेषण का विषय है कि वह बार–बार चित्रलेखा को ही क्यों माध्यम बनाती है? स्वयं राजा से क्यों नहीं बोलती? इसके दो ही उत्तर हो सकते हैं। या तो कालिदास ने उसके प्रथम प्रेम की दृष्टि से उसके मुग्धारूप को अत्यधिक अभिव्यक्त करना चाहा है अथवा उर्वशी में आत्मविश्वास का अभाव दिखाना चाहा है। कलाकारों में प्रायः ऐसा शील और विनय देखा जाता है। अभिज्ञानशाकुन्तल का सूत्रधार इसी आशय का वाक्य कहता है –

बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः।

उर्वशी भी एक अभिनेत्री है, दूसरों के सिखाये गये वाक्यों का चतुर्विध अभिनय उसका नियमित कार्य है जहाँ शिक्षा और अभ्यास पर बहुत बल दिया जाता है। इसी अभिनय क्रम में वह अपने वास्तविक प्रथम प्रेम में भी आत्मविश्वास प्राप्त नहीं कर पाती। इसीलिये चित्रलेखा के द्वारा राजा से अनुमति मांगती है। बाद में तो वह अभ्यस्त कलाकार के समान आत्मविश्वास से युक्त हो जाती है तथा राजा और उसके बीच हास–परिहास, मान, मान–भंग इत्यादि के दृश्य प्राप्त होते हैं।

उर्वशी का प्रेम राजा से अनुमति लेकर जाने के समय भी प्रकट होता है। अपने प्रथम प्रेम में भी तथा अभिनय के लिये देवलोक से बुलावा आने पर भी राजा के समक्ष वह अधिक-से-अधिक क्षणों तक रहना चाहती है। इसीलिये वह अपनी माला को लता की एक शाखा में फँसा देती है तथा राजा को अपलक देखती रहती है। चित्रलेखा किसी प्रकार उसकी माला छुड़ा पाती है। उर्वशी की इस चेष्टा पर राजा का ध्यान जाता है और वे लता को धन्यवाद देते हैं कि कुछ क्षणों के लिये उसके जाने में विघ्न उत्पन्न करके तुमने मेरा बहुत उपकार किया। अभिज्ञानशाकुन्तल में भी कालिदास ने इस अभिप्राय (Motif) को प्रकट किया है।[8]

अपने प्रेमी के दर्शनार्थ उर्वशी द्वितीय अंक में चित्रलेखा को लेकर पुन: आती है। यहाँ उसका प्रेम सभी स्थलों की अपेक्षा उत्कृष्ट है। यहाँ वह तृतीय अंक के समान अभिशप्त होकर नहीं आयी है। अपितु राजा के प्रति शुद्ध प्रेम की डोर में बँधकर स्वेच्छा से आती है। कुछ देर वह अपने आत्मविश्वास को प्राप्त करने के लिये प्रच्छन्न होकर राजा की स्थिति और बात-चीत का अवलोकन करती है। उसे पूर्ण विश्वास हो जाता है कि राजा उसके प्रति अत्यधिक आसक्त हैं, तब वह अपने प्रेमपत्र को लिखकर राजा के समक्ष गिरा देती है। उसके पत्र में मार्मिक प्रेम निवेदन है "स्वामिन्, आपने जिस प्रकार मुझे आदर दिया है मैं भी तदनुरूप आपके प्रति सानुराग हूँ। फिर भी यदि आप मुझे वैसी समझते हैं जैसा कि आप अभी कह रहे थे, तो भला आप ही बताइये कि जब मैं कोमल पारिजात के फूलों की शय्या पर लेटती हूँ तो उस समय नन्दनवन का शीतल पवन मेरे शरीर को क्यों जलाता है?

उसका प्रेम इतना उत्कट है कि बड़ी महारानी के होने पर भी तथा राजा का अपनी रानी के प्रति दाक्षिण्यभाव जानकर भी वह राजा के प्रति अपनी अनुरक्ति बढ़ाती ही जाती है। राजा से अपना वियोग वह होने देना नहीं चाहती। इसीलिये पुत्र हो जाने के बाद भी इन्द्र के कथन को परिणत होने से अधिकाधिक समय के लिये रोकना चाहती है। राजा से वियुक्त होने की उसे तनिक भी इच्छा नहीं, भले ही उसे पुत्र के वात्सल्य से वंचित होना पड़े। यहाँ भी उर्वशी के शील में धर्मसंकट की स्थिति आयी है जिसमें प्रेम की विजय होती है।

उर्वशी का प्रेम-पत्र लिखना भी एक विचित्र स्थिति में होता है क्योंकि राजा का विलाप सुनकर वह बहुत दु:खी होती है। राजा ने विदूषक से कहा था कि या तो वह मेरे मन की व्याकुलता को नहीं जानती या उसे अप्सरा होने का अभिमान है जिससे वह मेरे सहज प्रेम को ठुकरा रही है। इसपर उर्वशी अपने को धिक्कारती है कि राजा मुझे-ऐसी नीच समझते हैं कि मैं अहंकारिणी हूँ। उसमें अभी इतनी पौढ़ी तथा मुखरता नहीं है कि राजा के समक्ष जाकर उत्तर दे सके (असमर्थास्मि अस्याग्रतो भूत्वा अस्य प्रतिवचनस्य)। ऐसी स्थिति में ही भोजपत्र उत्पन्न करके उसी पर उन आरोपों का उत्तर देना चाहती है जो उसपर लगाये गये हैं। इसी प्रसंग में वह प्रेमपत्र लिखती है।

प्रेमपत्र का प्रसंग अभिज्ञानशाकुन्तल के तृतीय अंक में भी आया है किन्तु वह वर्तमान प्रसंग के विपरीत है। वर्तमान प्रसंग में राजा के कथन का उत्तर देने के लिये नायिका प्रेम-पत्र लिखकर राजा के समाने छोड़े देती है। परिस्थितियाँ उसे प्रकट होने के अनुकूल नहीं लगती। दूसरी ओर अभिज्ञानशाकुन्तल में शकुन्तला अपनी विरह-व्यथा का आख्यान नलिनी-पत्र पर नखों से लिखकर रखती है। और राजा दुष्यन्त सहसा प्रकट होकर अपनी विरह-व्यथा को उससे कहीं

अधिक सिद्ध कर देते हैं।[9] शकुन्तला का लज्जा–भाव दुष्यन्त ही दूर करते हैं। किन्तु उर्वशी लज्जावश राजा को स्वयं उत्तर नहीं दे पाती; प्रेम–पत्र ही उसके उत्तर का माध्यम बनता है। यह उसकी संकोचशीलता तथा अपने ऊपर लगाये गये आरोपों के प्रति असहिष्णुता इन दोनों का संयुक्त साधन बनता है। उसका संकोच, राजा के समक्ष पहले प्रेमपत्र तब चित्रलेखा को भेजने के बाद ही समाप्त होता है तथा विशुद्ध प्रेमिका के रूप में 'जयतु–जयतु महाराजः' कहकर ही वह अपने प्रेमी के समक्ष प्रकट होती है। किन्तु यह भेंट भी स्वर्ग से प्राप्त अभिनय – निमन्त्रण के कारण क्षणमात्र में ही समाप्त हो जाती है, फिर भी इससे उर्वशी के प्रणय के सोपानों का तथा उसके आत्मनियन्त्रण का अनुमान तो हो ही जाता है।

उर्वशी की गुणग्राहकता - उर्वशी अपने समक्ष आनेवाले सभी लोगों के गुणों की प्रशंसा करती है। जब वह पहली बार पुरूरवा की महारानी औशीनरी को देखती है और राजा के द्वारा देवी के रूप में उसका स्वागत भी पाती है तो वह कहती है कि इस समय इनका स्वागत 'देवी' शब्द के द्वारा बिल्कुल उचित है क्योंकि अपने तेज के कारण ये शची (इन्द्राणी) से किसी प्रकार कम नहीं लग रही हैं।' सामान्यतः सपत्नियों में ईर्ष्या होती है किन्तु उर्वशी के द्वारा ज्येष्ठा रानी की प्रशंसा चित्रलेखा को भी यह कहने के लिये विवश कर देती है कि तुमने ईर्ष्या छोड़कर यह बिल्कुल सही बात कही है (साधु असूया–पराङ्मुखं मन्त्रितं त्वया)।

अपने प्रिय राजा के द्वारा ज्येष्ठा रानी के प्रति किये गये आदर पर भी उसका ध्यान जाता है तथा राजा के दाक्षिण्य की भी वह प्रशंसा करती है – महान् खलु अस्य एतस्यां बहुमानः। इससे सिद्ध होता है कि कुछ भी गुण देखकर वह मुखर हो उठती है।

मानवती उर्वशी – यद्यपि उर्वशी साधारण स्त्री होने के कारण कहीं भी प्रत्यक्ष रूप से मान का प्रदर्शन नहीं करती, अपितु अपने ऊपर लगे हुए अहंकार के आरोप को बड़े सुकुमार ढंग से प्रेमपत्र के द्वारा निरस्त करती है, तथापि चतुर्थ अंक के प्रवेशक में सहजन्या और चित्रलेखा के वार्तालाप से यह ज्ञात होता है कि वह मान और कोप भी करती है। चित्रलेखा बताती है कि गंधमादन पर्वत पर विहार के लिये उर्वशी राजा को लेकर गयी थी। वहाँ वह मंदाकिनी के तट पर बालू से बालसुलभ क्रीड़ा कर रही थी। वहाँ उसने देखा कि राजा उदयवती नामक एक विद्याधर कन्या को निर्निमेष देख रहे थे। इसी पर उर्वशी कुपित हो जाती है और राजा का अनुनय भी ठुकरा देती है। सहजन्या ने इसपर ठीक ही टिप्पणी की है कि जब प्रेम बहुत बढ जाता है तब ऐसी बातें सहन नहीं होती (**दूरारूढः खलु प्रणयोऽसहनः**)।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि जबतक उर्वशी राजा की प्रेमिकामात्र रही थी तबतक उसमें ज्येष्ठा रानी को भी सहने की क्षमता थी। वही उर्वशी जब गन्धमादन में राजा के साथ निभृत–विहार के लिये आयी है तो राजा की सामान्य–दृष्टि भी दूसरी पर पड़े यह उसके लिये असह्य है।

इस प्रकार उर्वशी के चरित्र के अनेक पक्ष कालिदास ने इस नाटक में प्रस्तुत किये हैं जो आख्यानों में प्राप्त उर्वशी चरित्र से अधिक वैविध्यपूर्ण हैं।

(2) रानी औशीनरी

राजा पुरूरवा की ज्येष्ठा रानी के रूप में काशिराजपुत्री औशीनरी उर्वशी-विषयक आख्यानों में अज्ञात होने के कारण महाकवि कालिदास की विशुद्ध कल्पना से उत्पन्न स्त्री-पात्र है। नाटिका में जिस प्रकार ज्येष्ठा तथा नवप्रेमिका के रूप में दो नायिकाओं की उपस्थिति होती है उसी प्रकार कालिदास ने इस रूपक को भी तदुन्मुख बनाने के लिये ज्येष्ठ रानी की कल्पना की है। वह इस नाटक के दो अंकों में ही आती है। द्वितीय अंक में वह अपनी चेटी निपुणिका से यह ज्ञात करा लेती है कि राजा किसी उर्वशी के प्रेम में आसक्त हो गये हैं। वह छिपकर राजा के विदूषक से होनेवाले वार्तालाप को सुनती है तथा पता लगाती है कि निपुणिका की सूचना प्रामाणिक है या नहीं।[11] इससे औशीनरी के शील का यह पक्ष ज्ञात होता है कि वह किसी पर विश्वास तभी करती है जब उसकी बात प्रमाण से सिद्ध हो जाय। अपने पति पुरूरवा के विषय में कोई आरोप लगा रहा हो तो उस पर वह सहसा विश्वास नहीं कर सकती थी। इससे औशीनरी का प्रतिप्रेम उत्कृष्ट रूप से प्रकट होता है। उसके इस गुण का निरूपण आगे चलकर भी होता है।

सहसा देवी के हाथों में उर्वशी का लिखा हुआ प्रेमपत्र आ जाता है। निपुणिका उसे पढ़कर समाझाती है कि महाराज को लक्ष्य करके उर्वशी ने ही यह प्रेमपत्र लिखा है। देवी की इस पर कोई तात्कालिक प्रतिक्रिया नहीं होती है। उस प्रेमपत्र को (जो भोजपत्र पर अंकित है) रानी औशीनरी पुरूरवा को दे देती है। वह स्वयं शांत ही रहती है और केवल यही कहती है कि आपके लिये सर्वथा उचित है कि अपना सौभाग्य (प्रेम का विषय) मुझसे छिपाएँ। विदूषक के द्वारा राजा के पित्त के दूषित होने का बहाना बनाये जाने पर भी वह शान्तचित्त ही रहती है और यह कहकर चली जाती है कि यह मेरा ही अपराध है कि मैं अनुचित समय में आपके कार्य में बाधा बनकर उपस्थित हो गयी। देवी का यह व्यंग्य राजा को आहत कर देता है और वे उसके चरणों पर गिर जाते हैं। देवी स्वगत-कथन करती हुई चली जाती है कि मैं इतनी सरल नहीं हूँ कि अनुनयपूर्ण बातों का आदर करूँ। मुझे केवल भय है तो अपने अशिष्ट व्यवहार से क्योंकि उसके बाद पश्चात्ताप करना पड़ता है (किन्तु अदाक्षिण्यकृतात् पश्चात्तापाद् बिभेमि)। औशीनरी का यह स्वगत-कथन उसके कुलीनस्वभाव का सूचक है। राजा के प्रति वह राजकुलोचित शिष्टाचार का ध्यान रखती है।

अशिष्ट व्यवहार से (चाहे पति के प्रति हो या नयी प्रेमिका के प्रति) अनेक ज्येष्ठा नायिकाओं ने संस्कृत नाटिकाओं में विचित्र स्थितियाँ उत्पन्न की हैं किन्तु औशीनरी का शालीन व्यवहार उन सबसे भिन्न है।

औशीनरी एक दु:खी नायिका तो है किन्तु अपने प्रियतम को प्रसन्न करने के लिये धार्मिक कार्यों में विश्वास करती है, वह मान नहीं करती। तृतीय अंक में वह प्रियानु-

प्रसादन-व्रत करती है जिससे उसके स्वामी उसके प्रति मधुरभाव रखें। राजा के अनुनय-वचन (3.13) पर वह सरल हृदय से कहती है कि व्रत धारण करने का ही यह प्रभाव है जो आर्यपुत्र ने मेरे अनुकूल इतना तो कहा (**नन्वेतस्य व्रतपरिग्रहस्यायं प्रभावो यदेतावन्मन्त्रित आर्यपुत्र:**)[12] इससे औशीनरी का न केवल धर्म के प्रति विश्वास प्रकट होता है अपितु हृदय की सरलता भी स्पष्ट होती है।

इस नाटक में औशीनरी राजा के उर्वशी प्रेम के समक्ष आत्मसमर्पण कर देती है और कहती है कि जिस किसी स्त्री के प्रति आर्यपुत्र का स्नेह होगा अथवा जो स्त्री उनके समागम की इच्छुक होगी उसके प्रति मैं सदा प्रेमपूर्वक व्यवहार करूँगी। यह बात वह रोहिणी और चन्द्रमा को साक्षी बनाकर कहती है। इस प्रकार का आत्मसमर्पण ज्येष्ठा नायिका के द्वारा किसी अन्य संस्कृत रूपक में नहीं मिलता। प्राय: ज्येष्ठा रानी अपने सम्बन्ध विशेष के कारण अथवा किसी दिव्य वाणी के कारण या राजा के भावी अभ्युदय की दृष्टि से नयी नायिका को स्वीकार करती है। औशीनरी के समक्ष ऐसा कोई कारण नहीं था फिर भी वह एक विवश पत्नी के रूप में तथा अपनी शालीनता के कारण उर्वशी को राजा की प्रेमिका बनने में बाधक नहीं होती। उसके प्रति सामाजिकों की सहानुभूति बहुत अधिक उत्पन्न होती है।

चित्रलेखा - उर्वशी की सखी

नाटक की नायिका उर्वशी का सदा साथ देनेवाली चित्रलेखा अप्सरा जाति की कन्या है वह पञ्चम अंक को छोड़कर सभी अंकों में या कम-से-कम प्रवेशक में आती है। राक्षस द्वारा उर्वशी का जब अपहरण होता है और राजा पुरूरवा उसे बचाकर लाते हैं उस समय से वह उर्वशी के साथ-साथ तबतक रहती है जबतक उर्वशी का स्थायी समागम राजा के साथ नहीं हो जाता। उसके बाद चतुर्थ अंक के प्रवेशक में वह सहजन्या से वार्तालाप करती है और उर्वशी के लतारूप में परिणत हो जाने की सूचना देकर अपने संताप को भी व्यक्त करती है। इस प्रकार वह अभिज्ञानशाकुन्तल की अनसूया-प्रियंवदा के समान 'काव्य की उपेक्षिता' नारी नहीं है। अपनी सहेली के परिणय के बाद भी वह उसके दु:ख-सुख की सूचना रखती है।

चित्रलेखा में सखी-स्नेह का प्रकर्ष है। वह समय के अनुकूल बोलना जानती है। उर्वशी को भयमुक्त और सचेत करने के लिये वह कहती है - **सखि उर्वशि ! पर्यवस्थापयात्मानम्, अनप्सरेव प्रतिभासि।**[13] चित्रलेखा का तात्पर्य यह है कि धैर्य छोड़ देना मनुष्यों के लिये भले उचित हो किन्तु देवयोनि में उत्पन्न अप्सराओं के लिये यह शोभाजनक नहीं है कि धैर्य छोड़ दें। अपनी सखी के इस प्रोत्साहन-वाक्य पर ही उर्वशी सचेत हो जाती है। इस प्रकार अवसरानुकूल कथन में चित्रलेखा पटु है। वह उर्वशी को राजा की प्रशंसा सुनाती है कि इन्द्र के समान ही प्रभावशाली राजर्षि पुरूरवा ने तुम्हारी रक्षा की है।

उर्वशी की ओर से राजा को कुछ कहना होता है तो वही माध्यम बनती है। प्रथम अंक में महाराज से स्वर्ग में वापस जाने की अनुमति प्राप्त करने के लिये वह अत्यन्त सुन्दर वक्रोक्ति का प्रयोग करती है- "महाराज ! उर्वशी विज्ञापयति महाराजेन अभ्यनुज्ञाता - इच्छामि प्रियसखीमिव महाराजस्य कीर्तिं सुरलोकं नेतुम्"। इसमें केवल स्वर्ग लौटने की अनुमति माँगी गयी है किन्तु इस तथ्य को वक्रता-विशेष से प्रस्तुत किया गया है। यह चित्रलेखा की वाक्पटुता के पक्ष में जाता है। इसी प्रकार द्वितीय अंक में भी उर्वशी चित्रलेखा के माध्यम से ही राजा से लौटने की अनुमति माँगती है।

चित्रलेखा परिहास में भी निपुण है। उर्वशी जब प्रथम अंक में राजा से अनुमति लेकर लौटने लगती है तो उसकी माला लता की शाखा में फँस जाती है और चित्रलेखा से छुड़ाने का अनुरोध करती है। इसपर चित्रलेखा हँसकर कहती है कि यह माला तो बहुत उलझ गयी है, इसे छुड़ाना बहुत कठिन है (दृढं खलु लग्ना सा, अशक्या मोचयितुम्)।[14] उर्वशी स्पष्ट समझ जाती है कि यह परिहास कर रही है।

द्वितीय अंक में जब उर्वशी स्वयं पुरूरवा से मिलने का निश्चय कर के पृथ्वी पर आती है तो उस समय भी चित्रलेखा उसके साथ है। राजा चित्रलेखा को अकेली देख कर कहते हैं कि तुम्हारी सदा-संगिनी उर्वशी कहाँ है? तुम्हारी अकेली शोभा नहीं हो रही है। उस समय चित्रलेखा अपनी वाक्पटुता दिखाती हुई कहती है कि पहले मेघमाला ही आकाश में छा जाती है तब बिजली की चमक दिखाई पड़ती है (ननु प्रथमं मेघराजि: दृश्यते, पश्चाद् विद्युल्लता)। इस स्थान पर भी उर्वशी के प्रणयनिवेदन में चित्रलेखा ही माध्यम बनती है और उर्वशी के हृदय के भावों को राजा के समक्ष रखती है।

तृतीय अंक में भी उर्वशी चित्रलेखा के साथ ही राजा के पास आती है। राजा और विदूषक के वार्तालाप की व्याख्या करके उर्वशी को वही आश्वस्त करती है। पुन: देवी औशीनरी के आने पर भी उसी के द्वारा उर्वशी की सौभाग्यकामना की जाती है। चित्रलेखा उर्वशी को राजा के हाथों में सौंप कर स्वर्ग लौट जाती है किन्तु अपनी सखी का प्रेम राजा से यह निवेदन करने को विवश कर देता है कि ग्रीष्मकाल में उर्वशी को स्वर्ग जाने की उत्कंठा न हो जाय ऐसी व्यवस्था आपको करनी चाहिये। इस प्रकार अपनी सखी से ऐसा स्नेह चित्रलेखा को है कि वह उसके सुख की व्यवस्था की उपेक्षा नहीं चाहती।

चतुर्थ अंक में उसकी भूमिका केवल सूचना देने की है। अपनी सखी सहजन्या के समक्ष वह अपनी वेदना प्रकट करती है कि बहुत दिनों के बाद उर्वशी का समाचार जानने के लिये मैने जब ध्यान किया तो ज्ञात हुआ कि वह लता के रूप में परिणत हो गयी है। इसी से वह बहुत संतप्त है। नेपथ्य से गीत सुनाई पड़ता है जिसमें अपनी सखी के विरह में दो हंसिनियों द्वारा सरोवर के तट पर सिसकने की प्रतीकात्मक सूचना मिलती है।

अन्य स्त्री-पात्र

इस नाटक में सहायक भूमिका में आनेवाली तथा गौण स्थान रखनेवाली स्त्रियों में देवी की दासी (चेटी) निपुणिका है जो विदूषक से राजा के अभिनव प्रेम की बात उगलवा लेती है इस प्रकार उसकी भूमिका एक राजनयज्ञ के समान है। अपनी स्वामिनी का कार्य वह अच्छी तरह निभाती है। फिर भी देवी उसकी सूचना की प्रामाणिकता की स्वयं परीक्षा करती हैं। पञ्चम अंक में सत्यवती नामक तापसी आती है जिसकी भूमिका परोक्ष में बहुत महत्त्वपूर्ण है। वह च्यवन ऋषि के आश्रम में रहती है तथा उर्वशी के पुत्र राजकुमार आयु का पालन-पोषण धात्री के रूप में करती है। जब आयु बड़ा होकर शस्त्र-शास्त्र में निष्णात हो जाता है तब उसे लेकर सत्यवती राजा के पास आती है। वह तुरत लौट जाती है क्योंकि आश्रम के कार्यों को वह बहुत देर तक नहीं छोड़ सकती (उपरुध्यते ममाश्रमधर्म:)।

इस नाटक की नायिका उर्वशी अप्सरा जाति की है। इसलिये स्वभावत: कुछ पुराणप्रसिद्ध अप्सराएँ छोटी भूमिकाओं में आयी हैं। रम्भा और मेनका प्रसिद्ध अप्सराएँ हैं। सहजन्या कालिदास की कल्पना है। वह चित्रलेखा के साथ चतुर्थ अंक के प्रवेशक में आती है तथा चित्रलेखा से उर्वशी–विषयक सूचना प्राप्त करके उससे सहानुभूति दिखाती है। इसप्रकार इस नाट्य–रचना में कालिदास जिन पात्रों का प्रयोग किया है वे अपने शील से तथा व्यक्तिगत विशेषताओं से सामाजिक के समक्ष एक आदर्शपूर्ण परिवेश की प्रस्तुति करते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. दशरूपक 1.11 वस्तु नेता रसस्तेषां भेदक:।
2. नाट्यशास्त्र, अध्याय – 24.
3. विक्रमोर्वशीय 1.2 के पूर्व। सूत्रधार – तदुच्यतां पात्रवर्ग : स्वेषु स्वेषु पाठेष्वसंमूढैर्भवितव्यमिति।
4. दशरूपक 2.9 (द्वितीय चरण)– हास्यकृच्च विदूषक:। साहित्यदर्पण 3.40.
5. विक्रमोर्वशीय 2.18 के बाद। दिव्यं खलु तद् भूर्जपत्रं गतमुर्वश्या मार्गेण।
6. डॉ॰ उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ॰ 447.
7. कुमारसंभव 1.49
8. अभिज्ञानशाकुन्तल 2.12 दर्भाकुरेण चरण: क्षत इत्यकाण्डे . ...इत्यादि।
9. अभिज्ञानशाकुन्तल 3.14–15 शकु॰
   तव न जाने हृदयं मम पुन: कामो दिवापि रात्रिमपि।
   निघृण ! तपति बलीयस्तव वृत्तमनोरथान्यङ्गानि।।
   दुष्यन्त– तपति तनुगात्रि ! मदनस्त्वामनिशं मां पुनर्दहत्येव।
   ग्लपयति यथा शशाङ्कन तथा हि कुमुद्वती दिवस:।।
10. विक्रमोर्वशीय 3.12 के बाद। उर्वशी का कथन – स्थाने खलु इयं देवीशब्देनोपचर्यते। न किमपि परिहीयते शय्या ओजस्वितया।
11. विक्रमोर्वशीय 2.18 के बाद। देवी – तेन हि लताविटपान्तरिता श्रोष्यामि तावदस्य विश्रब्धामन्त्रितानि यत्त्वया कथितं तत्सत्यं न वेति।
12. विक्रमोर्वशीय 3.13 के बाद देवी का कथन।
13. विक्रमोर्वशीय 1.7 के बाद।
14. विक्रमोर्वशीय 1.18 के पूर्व।